पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार कलश टीका, कलश २७१
ता. ०२-०८-१९९०, प्रवचन नंबर ५२० version 2

२७१ कलश का व्याख्यान है, उसका स्पष्टीकरण चलता है कि आत्मा ही ज्ञाता है और आत्मा ही (मेरा) ज्ञेय है। अनंतकाल से एक भूल हो गयी है, कि - मैं ज्ञाता और षट्द्रव्य मेरा ज्ञेय, मैं ज्ञाता और नवतत्व का भेद मेरा ज्ञेय, इस भूल से उपयोग बाहर भटकता है। मगर मैं ही ज्ञाता, मैं ही ज्ञेय, ऐसा अंदर में जो आवे तो उपयोग जो बाहर जाता था, वो उपयोग अभिमुख होकर अपनी शुद्धात्मा को उपादेयरूप ज्ञेय बनाता है, तो शुद्धोपयोग हो जाता है। शुद्धोपयोग के काल में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, अंदर का भेद भी दिखाई नहीं देता है। **धर्म का भेद, गुणों पर, धर्मी जो एक को देखे, तो उसमें तीनों भेद गर्भित हो जाते हैं। मगर भेद का लक्ष्य छूट जाता है।** ऐसी अपूर्व बात अनुभव की कला, इसमें है।

एक बात पहले की थी कि अमितगति आचार्य हुये हैं। एक सुन्दर विषय आया था, कल बात की थी। वो मेरे पास शास्त्र नहीं था। अभी आ गया है, तो उसमैं से पढ़ता हूँ।

ये अमितगति आचार्य का योगसार है, उसमें चूलिका नाम का अधिकार है, आखिरी, लास्ट। उसमें ४८ नंबर की गाथा है। वो मूल गाथा का अर्थ पहले पढ़ता हूँ, बाद में उसकी व्याख्या।

भिन्न-भिन्न ज्ञानों से उपलब्ध होने के कारण, भिन्न-भिन्न ज्ञान से उपलब्ध यानि जानने के कारण, शरीर और आत्मा का सदा परस्पर भेद है। शरीर से आत्मा भिन्न, आत्मा से शरीर भिन्न है। सदा के लिए, तीनों काल, जुदाई है। शरीर, इंद्रियों से अर्थात् इंद्रियज्ञान से जानने में आता है, शरीर। और आत्मा (वास्तव में) खरेखर स्व-संवेदनज्ञान से जानने में आता है। आत्मा अपने स्व-संवेदनज्ञान से जानने में आता है। और शरीर को जाननेवाला इंद्रियज्ञान जुदा है और आत्मा को जाननेवाला ज्ञान जुदा है। दो ज्ञान जुदा हैं। क्योंकि दो विषय जुदा हैं, एक शरीर और एक आत्मा। दो पदार्थ भिन्न हैं तो वो दो पदार्थों को जानने के लिए दो भाव अलग-अलग हैं।

व्याख्या उसकी:- **संसारी जीव को देह के साथ अनादि संबंध है। स्थूल देह का संबंध कभी छूटता है तो भी सूक्ष्म देह, जो तेजस और कार्माण नाम के शरीर हैं, उनका सबंध कभी छूटता नहीं। इसीलिए उसको**, कभी छूटता नहीं मतलब मोक्ष न हो, तब तक छूटता नहीं, ऐसा। छूटने का स्वभाव तो है। छूटा तो है, मगर संयोगरूपसे छूटता है। **उसमें आत्मबुद्धि द्वारा अनादि के संबंध को प्राप्त हुआ है। इस अनादि सम्बन्ध के कारण बहुत करके तो देह और आत्मा को एक समझने में आते हैं।** बहुत करके याने ज़्यादातर जीव उनको एक मानते हैं। सब एक मानते नहीं। **परंतु देह और आत्मा कभी एक होते नहीं, कभी। सदा भिन्न-भिन्न रहते हैं और उसका कारण।** अभी भिन्न रहते हैं, तो भिन्न-भिन्न को जाननेवाले दो ज्ञान भी भिन्न-भिन्न हैं।

देह और आत्मा सदा भिन्न-भिन्न रहते हैं, तो उनको जाननेवाले ज्ञान भी दो प्रकार के जुदा हैं, ऐसा

कहते हैं। **वह भिन्न ज्ञानों (के) द्वारा उपलब्ध होता है।** उपलब्ध होता है, इसका अर्थ जानने में आता है। इंद्रियज्ञान से शरीर जानने में आता है और आत्मा वास्तव में स्व-संवेदनज्ञान द्वारा ही साक्षात् जानने में आता है। इंद्रियाँ उसको जानने में असमर्थ हैं। इन्द्रियज्ञान से आत्मा अनुभव में आता नहीं। आत्मज्ञान से आत्मा जानने में आता है, ऐसा है। उसके ऊपर सूक्ष्मदृष्टि से विचार करना, तो आत्म-लाभ होगा, ऐसा है।

अभी चलता विषय, अपना। कलश २७१ के भावार्थ पर प्रवचन, ऐसा शीर्षक (मथाला) है, शीर्षक। बुक में है ना! आहाहा! **बहुत अच्छा भावार्थ है; वस्तु के मर्म का मक्खन है।** आत्मा - वस्तु जो ज्ञानमयी है, उसकी प्राप्ति के लिए मक्खन जैसी बात है, अमृत जैसी बात है।

कहते हैं, **अपने द्रव्य पर द्रष्टि देने से** अपने शुद्धात्मा को देखने से ही, द्रष्टि देते ही, **स्वयं ही ज्ञाता, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञेय है।** अपने शुद्धात्मा के सन्मुख उपयोग को लगाकर जब ज्ञायक को देखता है, तो स्वयं ही ज्ञाता, स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञान है - **ऐसी अनुभूति होती है।** क्या कहते हैं साधक? आत्मानुभवी क्या कहते हैं, फरमाते हैं? ऐसा अनुभव में आता है हमको, ऐसा फरमाते हैं। मैं ज्ञाता, मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान हूँ, ऐसे तीन के अभेद अनुभव में आत्मा स्वज्ञेय बन जाता है। **ऐसी अनुभूति होती है। छह द्रव्य ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसी अनुभूति नहीं होती।** अस्ति-नास्ति अनेकांत किया।

आत्मा का ही अनुभव हो, ज्ञान से और छहद्रव्य का अनुभव (भी) हो, ऐसा अनेकांत नहीं है। अपने ज्ञान से आत्मा ही दिखाई देता है और अपने ज्ञान से पर पदार्थ दिखाई देते नहीं है, क्योंकि अभिमुख उपयोग अंदर में जाता है, तो अकेले ज्ञायक पर द्रष्टि देने से ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय का अभेद अनुभव हो जाता है। आहाहा! **छह द्रव्य ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसी अनुभूति नहीं होती, क्योंकि परमार्थ से पर के साथ ज्ञेय-ज्ञायक सबंध है ही नहीं। ऐसी बात है!** जो व्यवहारनय से ज्ञाता-ज्ञेय का सबंध कहा है, आगम में, पर के साथ ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध व्यवहारनय से कहा है, तो भी परमार्थ द्रष्टि से देखो तो अपना जिसको हित करना हो, उस ही द्रष्टि से देखो तो ये ज्ञाता-ज्ञेय का व्यवहार भी दिखाई देता नहीं है। और अंदर का ज्ञाता-ज्ञेय का जो सद्भूत व्यवहार का भेद, वो भी दिखाई देता नहीं। अभेद सामान्य पर द्रष्टि देने से ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय अभेद हो जाता है।

यह अनुभव करने की गाथा है। अनुभवी पुरुष, अनुभव की कला विधि बताते हैं। **कहते हैं ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है।** ये आत्मा है **ज्ञानमात्र भाव** यानि आत्मा, **ज्ञातृक्रियारूप होने से** राग की क्रिया करनेवाला आत्मा नहीं है, (वो तो) अनात्मा है।

अज्ञानी को भासता है कि आत्मा राग का करनेवाला है। ज्ञानी गुरु उसे कहते हैं कि आत्मा, जानने की क्रिया करनेवाला है, राग की क्रिया करनेवाला नहीं है। राग हो तो भले हो, मगर मैं उसका करनेवाला नहीं हूँ। राग तो होता है, साधक को भी, छह गुणस्थान तक बुद्धिपूर्वक राग तो होता है। मगर होता है, साधक उसको करता नहीं है। अज्ञानी (को अज्ञान) की दशा में राग होता है। वो भी राग को करता तो है ही नहीं, मगर मैं (राग को) करता हूँ, ऐसा उसका प्रतिभास हो गया, मिथ्या। आहाहा! अकर्तापना छूटता नहीं और कर्ता तो बनता नहीं। कर्ता मानता है, ऐसी बात है।

ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। ये आत्मा ज्ञानस्वरूप है, रागमयी नहीं है। आत्मा, दुःखमय नहीं है, वो तो ज्ञानमयी है। और आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को

जानना। आत्मा का स्वभाव ज्ञान, वो द्रष्टि का विषय आ गया और ज्ञान का विषय आत्मा को जानना, वो निश्चय, ज्ञान की पर्याय का निश्चय आ गया। द्रव्य का निश्चय और पर्याय का निश्चय, दोनों एक समय में जब होता है, तब अनुभूति होती है।

द्रव्य का निश्चय क्या? कि मैं, मेरा आत्मा, ज्ञान-दर्शनमय हूँ मैं, इसलिए मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। तो द्रव्य का निश्चय आ गया, सामान्य स्वभाव का, और उसको मैं जानता हूँ, मेरा स्वभाव आत्मा को जानना है, तो ज्ञान आत्मा की ओर झुककर आत्मा को जान लेता है, तो ज्ञान की पर्याय का निश्चय हो गया। द्रव्य का निश्चय और ज्ञान की पर्याय का निश्चय। क्रम-क्रम से अभ्यास करने पर क्रम पड़ता है, मगर अनुभव के काल में अक्रम से वो दो भाव प्रगट हो जाते हैं। उस टाइम में अनुभूति होती है, निर्विकल्प आनंद का वेदन आता है।

देखो क्या कहा? गुरुदेव फरमाते हैं **देखो क्या कहा? कि जगत के जो ज्ञेय हैं**, ये जानने लायक पदार्थ, ज्ञान का विषय, परज्ञेय, परज्ञेय, परज्ञेय हैं ना? छहद्रव्य ज्ञेय हैं। नवतत्व का भेद ज्ञेय है। परज्ञेय। और चौदह गुणस्थान? स्वज्ञेय कि परज्ञेय? परज्ञेय है। आहाहा! चौदह मार्गणास्थान, चौदह जीवस्थान, जितना भेद है, ओहोहो! वो भेद परज्ञेय है। अभेद स्वज्ञेय है, आत्मा।

देखो क्या कहा? कि जगत के जो ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेरूप जाननक्रिया, वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञेयस्वरूप नहीं है। ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात होते हैं, वह वास्तव में छह द्रव्य ज्ञात नहीं होते ऐसा लिखा है। अच्छा! ये तो अंतर्मुख होने की बात है। समझे? ऐसे व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल का (है)। मैं राग का कर्ता हूँ और मैं राग का ज्ञाता हूँ, पर का, ये तो अनादिकाल का (व्यवहार का पक्ष है)। आहाहा! जितना व्यवहार, उतना मिथ्यात्व। आहाहा! ऐसा आया पाठ। (ऐसा) १७३ नंबर के कलश में (आया) और ये बनारसीदास कहते (उकत) हैं। केवली भगवान कहते (उकत) हैं, जितना व्यवहार उतना मिथ्यात्व। यानि जितना व्यवहार का पक्ष है, उतना मिथ्यात्व है, ऐसा लिखा है। आहाहा! अनुभवी पुरुष दो, (एक) राजमलजी - जैनधर्म का मर्मी और (एक) बनारसीदास(जी) - आगरा में हो गए (हैं)।

मुमुक्षुः- पंडित राजमलजी धर्मी, नाटक समयसार के मर्मी!

उत्तरः- मर्मी। आहाहा! उनको जो अनुभव हुआ ना, उसमें राजमलजी की टीका निमित्त हुई, बनारसीदास को। पहले तो बहुत स्वछंद में चढ़ गए थे। पर्याय तो पलटती है ना? आज का पापी कल धर्मात्मा हो जाता है। पर्याय का धर्म बनता है और पर्याय से आत्मा भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान करके अंतर्मुख हो, तो एक समय पहले मिथ्यात्व और दूसरे समय सम्यक्त्व होता है। (बस) एक समय का काम है। आहाहा! मिथ्यात्व का व्यय और सम्यक्त्व का उत्पाद, ध्रुव के लक्ष्य से, ऐसा (एक समय में होता है)। पर्याय में कर्ताबुद्धि गिरे (तो) फेरफार हो जाता है। फेरफार हुआ ऐसा ज्ञान होता है। मैंने फेरफार किया, ऐसा अज्ञान (उसको) होता नहीं है। वो अज्ञान का घर में गया (कि) मैंने फेरफार किया। मिथ्यात्व का नाश मैंने किया और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति (की), (ऐसा जो माने) उसकी दृष्टि तो पर्याय के ऊपर है। उसकी दृष्टि ज्ञाता पर कहाँ है? ज्ञायक पर कहाँ है? ध्रुव पर कहाँ है?

ध्रुव के लक्ष्य से, सामान्य स्वभाव के लक्ष्य से, परिणाम में फेरफार हो जाता है, स्वयं। स्वयं हो जाता है। आहाहा! दृष्टि, लक्ष्य वहाँ नहीं है, पर्याय पर। दृष्टि द्रव्य पर जाती है तो पर्याय में फेरफार स्वयं

हो जाता है। उसका कर्ता नहीं है। उसका ज्ञाता भी नहीं है, यहाँ तो ऐसा कहना है। भेद का ज्ञाता भी (नहीं)। सविकल्पदशा में भेद का ज्ञाता कहा जाता है। आहाहा! वो तो दोष है। चारित्र का दोष है, वो तो। आहाहा! नहीं होता, नहीं आता।

परंतु छह द्रव्य संबंधी अपना जो ज्ञान है, ज्ञान छहद्रव्य का है कि आत्मा का है? ज्ञान आत्मा का होता है। छहद्रव्य का ज्ञान होता नहीं है। भले छहद्रव्य ज्ञेयभूत निमित्तपने प्रतिभास हो, तब उस ही समय में ज्ञान तो आत्मा से होता है और आत्मा को प्रसिद्ध करता है। छहद्रव्य को (प्रसिद्ध करता) नहीं। आहाहा! जिसको अंदर में जाना हो, उसके लिए यह उत्कृष्ट निमित्त है।

परंतु छह द्रव्य संबंधी अपना जो ज्ञान है, वह ज्ञात होता है। ज्ञान जानने में आता है। छहद्रव्य जानने में आते नहीं है। **और वह वास्तव में आत्मा का ज्ञेय है।** जो छहद्रव्य जिसमें जानने में आ रहा है, ऐसी अपनी ज्ञान की पर्याय वह वास्तव में ज्ञेय है। भेद अपेक्षा से पर्याय को ज्ञेय कहा जाता है। अभेद अपेक्षा से आत्मा को ज्ञेय कहा जाता है। मगर छहद्रव्य ज्ञेय नहीं है। तो छहद्रव्य जिसमें जानने में आवें, वो ज्ञान की पर्याय है। तो जिस ज्ञान की पर्याय में आत्मा भी जानने में आता है तो ऐसी ज्ञान की पर्याय, ज्ञान का ज्ञेय है। वो भेद से समझाया जाता है। सचमुच तो अकेली ज्ञान की पर्याय ज्ञेय नहीं होती है। अकेली ज्ञान की पर्याय ज्ञेय नहीं होती है, क्योंकि ज्ञायक से ज्ञान की पर्याय भिन्न नहीं है। (बल्कि) अनन्य (है), तादात्म्य है, तो सारा आत्मा ज्ञेय बन जाता है। भेद से समझाया जाता है कि परज्ञेय नहीं है, ज्ञान की पर्याय ज्ञेय होती है। परज्ञेय जानने में आता है ऐसा कहना, यह तो व्यवहार है। जितना व्यवहार उतना मिथ्यात्व, ऐसा पाठ आया। जितना व्यवहार, लोक प्रमाण, असंख्यात प्रदेशी व्यवहार, उतना मिथ्यात्व। ऐसा कल पढ़ा था, १७३ कलश में। बनारसीदास में आया, नाटक समयसार (में आया)। हाँ! व्यवहार की श्रद्धा मिथ्यादर्शन। आहाहा! देखो! निश्चय की श्रद्धा सम्यग्दर्शन! आहाहा! निश्चय यानि यथार्थ।

मुमुक्षुः- जे-जे व्यवहार भाव ते-ते मिथ्यात्व भाव, केवली उकत हैं।

उत्तरः- केवली उकत हैं, वो बात है। वो बात है। केवली भगवान ने कहा है जितना-जितना असंख्यात लोकप्रमाण व्यवहार, उतना मिथ्यात्व है। आहाहा! उसका पक्ष मिथ्यात्व है। पक्ष छूटने के बाद जो व्यवहार का ज्ञाता है, वो चारित्र का दोष है। व्यवहार का पक्ष श्रद्धा का दोष है। अनुभव के बाद सविकल्पदशा में आवे, जाना हुआ प्रयोजनवान, तो भी चारित्र का दोष है। श्रद्धा का दोष नहीं (है)। मगर, वो जानने का बंद करके फिर-फिर शुद्धोपयोग में ज्ञानी जाता है। आहाहा! अंदर में टिकता नहीं है, बाहर आता है, तो भेद को जानता है। मगर भेद को जानने में उपयोग लगता नहीं है। आहाहा! लगता तो अंदर में है, ऐसी बात है।

परज्ञेय ज्ञात होते हैं-ऐसा मानना, (कहना) वह तो व्यवहार है। ज्ञेय संबंधी अपनी ज्ञान की पर्याय जाननेरुप जो हुई, मैंने किया ऐसा नहीं लिखा। हुई लिखा? अच्छा! किया लिखा नहीं। **हुई**! स्वयं होती है पर्याय, पर्याय को कौन करे? आहाहा! पर्याय को कर्ता मानता है, (वो) दो सत् का खून करता है। क्या कहा? जो आत्मा, बाहर की बात तो दूर रही, परपदार्थ की बात। मगर अंदर में उत्पाद-व्ययरूप होती है पर्याय, उसका मैं कर्ता हूँ, ऐसा मानता है, वह दो सत् का खूनी है। खून करता है। हिंसक है। दो सत् का खून कैसे? कि आत्मा अकर्ता होने पर भी आत्मा को पर्याय का कर्ता मान लिया तो अकर्ता

द्रव्यस्वभाव का खून हो गया, सत् का, त्रिकाली सत् का। और पर्याय स्वयं होने पर भी मैंने पर्याय की, तो (वो) पर्याय सत्-अहेतुक नहीं रही, तो पर्याय सत् का खून हुआ। आहाहा! ज्ञाता हुआ तो अहिंसक हो गया। वो अहिंसा परमोधर्म है। मगर मैं पर्याय का कर्ता हूँ, वो हिंसक है। दो सत् का खून किया उसने। आहाहा! दो सत् का खून हुआ, तो उसका दंड भी भारी है। आहाहा! मिथ्यात्व का दोष होता है, तो दंड भी भारी है। आहाहा! सब चारित्र के दोष पर नज़र करते हैं। चारित्र का दोष, चारित्र की चर्चा। बस! आहाहा!

थोड़ी कषाय की मंदता तो करनी चाहिए, ऐसा तो करना चाहिए, यह तो पात्रता है, ऐसी-ऐसी बहुत पात्रता (की बात, आजकल) चलती है।

एक गुरुदेव ने प्रश्न उठाया। प्रश्न उठाया किसमें? चर्चा रात को चलती थी ना, तो गुरुदेव को प्रश्न किया कि भाई! सम्यग्दर्शन की पूर्व-भूमिका में पात्रता करने के लिए क्या करना चाहिए? ९२ पेज पर है। ९२, पेज नंबर ९२। ये ज्ञान-गोष्ठी इधर जयपुर से छप गयी। आहाहा! ९२ पेज है। ९२ नंबर का प्रश्न है कि पन्ना? प्रश्न ९२ हाँ! अच्छा! ठीक समझ गए। प्रश्न नंबर ९६, पेज ९२।

(ज्ञान-गोष्ठी) प्रश्नः- यह सारा अभ्यास सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए तो अकिंचित्कर है ना?

प्रश्न। प्रश्न तो बहुत हजारों-लाखों प्रश्न हो गए, गुरुदेव के सामने।

(ज्ञान-गोष्ठी) प्रश्नः- पहले व्रतादि का अभ्यास तो करना चाहिए ना?

कषाय की मंदता तो प्रथम करनी चाहिए ना? ऐसा प्रश्न आया।

(ज्ञान-गोष्ठी) उत्तरः- प्रथम में प्रथम, राग से भिन्न पड़ने का अभ्यास करना चाहिए। राग से भेदज्ञान के अभ्यास बिना, राग से मैं जुदा हूँ, ऐसे भेदज्ञान के अभ्यास बिना व्रतादि का अभ्यास करना वह तो सचमुच मिथ्यात्व का अभ्यास करना ही है।

कषाय की मंदता का अभ्यास करना, वो तो मिथ्यात्व का अभ्यास है। आहाहा! जिससे जुदा पड़ना है, उसकी कर्तृत्वबुद्धि करता है। आहाहा! भेदज्ञान करना चाहिए कि करना चाहिए राग को? राग से जुदा मैं हूँ, ऐसा भेदज्ञान बार-बार करना चाहिए। भले! निर्विकल्पध्यान आवे, ऐसे सम्यग्दर्शन होना हो तो होवे काललब्धि पके तब, (लेकिन) पुरुषार्थ (तो) चलना चाहिए भेदज्ञान का कि, राग से मैं जुदा, मैं तो जाननहार हूँ। कषाय का करनेवाला मैं नहीं हूँ। सचमुच, तो कषाय को जाननेवाला भी मैं नहीं हूँ, मैं तो जाननहार हूँ। मैं तो जाननेवाले को जानता हूँ। आहाहा! ऐसा बार-बार अभ्यास करने से क्या होता है कि पात्रता होती है। पात्रता का अर्थ क्या है? कि जिस भाव में मिथ्यात्व गलता है, वो, उसका नाम पात्रता है। जिस क्रिया में मिथ्यात्व दृढ़ होता है, बढ़ता है, कम ही नहीं होता है, वह पात्रता ही नहीं है। समझे? आहाहा! लोगों को मीठा लगे, मगर ज़हर है। आहाहा! ऐसा मीठा ज़हर होता है। समझे? मीठा लगे लेकिन समाप्त कर दे, ऐसा है।

परज्ञेय ज्ञात होते हैं-ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। ज्ञेय संबंधी अपनी ज्ञान की पर्याय जाननेरूप, जाननरूप जो हुई, वह अपना ज्ञेय है, परंतु परज्ञेय अपना नहीं। पर अपना ज्ञेय ही नहीं, अपना ज्ञान ही अपना ज्ञेय है। अभेद से अपना आत्मा ही अपना ज्ञेय है। भेद से पर्याय ज्ञेय है, ऐसा कहा जाता है। मगर सचमुच तो अभेद वो ज्ञेय। पर्याय जुदी नहीं है, आत्मा से। भगवान आत्मा से ज्ञान की पर्याय

अलग नहीं है। आत्मा इधर और ज्ञान की पर्याय उधर, ऐसा नहीं है। ज्ञान की पर्याय भेद से जानने में आती है, अभेद से तो आत्मा ही जानने में आता है, मगर भेदरूप से समझाया जाता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा!

छह द्रव्य को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय अपनी है। छहद्रव्य को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय अपनी है। क्यों? क्यों अपनी है? कि वो ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आ रहा है, इसलिए अपनी है। अकेली छहद्रव्य की पर्याय को जाने वह ज्ञान की पर्याय अपनी नहीं है। **छहद्रव्य को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय अपनी है, उसको छहद्रव्य का ज्ञान मानना (कहना) वो व्यवहार है।** है आत्मा का ज्ञान और कहना छहद्रव्य का ज्ञान हुआ। आहाहा! छहद्रव्य का ज्ञान कभी होता ही नहीं है और एक समय भी ऐसा नहीं है कि आत्मा ज्ञान के बिना हो। ज्ञान में आत्मा जानने में न आवे, ऐसा एक समय भी (होता) नहीं है। समय-समय पर आबाल-गोपाल (को), भगवान आत्मा जानने में आ रहा है। छहद्रव्य जानने में नहीं आ रहा। तो भी निमित्त देखकर नैमित्तिक की अपेक्षा से आहाहा! कल बात किया था, सब। ३१ नंबर की (गाथा में)। एक प्रवचनसार की ३१ नंबर की गाथा है, वो पढ़ने जैसी है। ज्ञेयाकार ज्ञान! आहाहा! निमित्तभूत ज्ञेयाकार और नैमित्तिकभूत ज्ञेयाकार, दो बात उसमें अच्छी ली है। आहाहा!

ज्ञान की पर्याय अपनी है, उसे छह द्रव्य का ज्ञान कहना, वह व्यवहार है। ज्ञेय-ज्ञान, ज्ञेय का नहीं। ज्ञेय-ज्ञान, ज्ञेय-ज्ञान, ज्ञेय जो है, उसमें निमित्त ऐसा ज्ञान, वह ज्ञेय का नहीं है, परंतु ज्ञान का ज्ञान है। ज्ञेय जब निमित्त है, ज्ञेय है ना? ज्ञेय का ज्ञान ऐसा कहा जाता है। पर ज्ञान, ज्ञेय का नहीं है। ज्ञान तो ज्ञान का ही है अर्थात् आत्मा का ही है। ज्ञेय का ज्ञान किसी को होता ही नहीं है। जो ज्ञेय का ज्ञान हो, तो ज्ञान-ज्ञेयरूप हो जाता है। आत्मा का नाश हो जाता है। ऐसा सेटीका की गाथा में लिखा है। आहाहा!

खड़ी भींत को सफेद करती है ऐसा जो मानता है, वो खड़ी का नाश कर दिया, उसने। पहले तो खड़ी, खड़ी यानि चूना। चूना, पहले डब्बे में था। डब्बे में चूना था और दीवाल काली थी। तहाँ तक तो दो पदार्थ थे। क्या दिखता है? कि दीवाल काली दिखती है और सफेद तो है, वो चूना है डब्बे में। अच्छा! दूसरे दिन वो चूना लगाया दीवाल पर। वो भाई आए, फिर पूछा, अभी क्या है? कि दीवाल सफेद है। अच्छा! दीवाल सफेद हो गई, तो चूना दृष्टि में से गायब हो गया। दीवाल सफेद नहीं हुई। दीवाल तो जैसी है, वैसी है और चूना ही सफेद है। आहाहा!

समयसार में तो माल भरा है, माल। सफेद है। वह भी सफेद ही है। खड़ी तो खड़ी ही है। खड़ी तो खड़ी ही है। चूना दीवाल का नहीं है। आहाहा! ऐसे ज्ञान, ज्ञान आत्मा को जानता है, वहाँ तक तो बराबर है, ज्ञान आत्मा का है। मगर ज्ञान में देव-गुरु-शास्त्र निमित्त आया तो कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र को मैं जानता हूँ (ऐसा मानने से) आत्मा गया, गायब हो गया। तू उसको जानता है कि जाननहार को जानता है? ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। ज्ञायक ज्ञेय का है नहीं। बहुत विस्तार से उसमें (लिखा है)। (उसके) ऊपर १९ बार तो व्याख्यान हो गया, सेटीका की गाथा पर। ज्ञान की पर्याय का निश्चय और ज्ञान की पर्याय का व्यवहार, ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीन प्रकार की पर्याय होती हैं, उसका निश्चय और तीन प्रकार की पर्याय का व्यवहार, ऐसा बहुत खुलासा उसमें है। आहाहा!

टाइम मिलना चाहिए। आहाहा! पैसा कमाने के लिए तो टाइम मिलता है। कोमलचंद जी! बहुत

टाइम मिलता है, चार घंटा, छह घंटा, आठ घंटा, दस-दस घंटा मुंबई में तो। समझे? आहाहा! मगर ये कमाई, ज्ञान की लक्ष्मी, आहाहा! जो साथ में आती है। वो जड़-लक्ष्मी तो साथ में आती नहीं है। किसी को आती नहीं है।

एक दफ़े ऐसा हुआ, मैं बम्बई में रहता था पहले, काम के लिए गया था। तो एक करोड़पति आदमी आया, पहचानवाला मुमुक्षु अपना। मैं अकेला था वो भी अकेला ही आया। (और बोला) कि भाई! मेरी परिणति आगे बढ़ती नहीं है, तो कहाँ मेरी रुकावट है? आपको वो ख्याल में आवे तो मेरे को बोल दो। मैंने कहा, सूक्ष्म तो आप जानो, मगर स्थूलरूप से मैं जानता हूँ। कह दूँ? कि आपको तीव्र लोभ कषाय है। उसने कान पकड़ लिया कि बराबर है! बाद में उसने ही बोला कि इतनी लोभ कषाय है कि कभी इधर से ड्राफ्ट निकालकर, अगले भव में (अगर) ले जा (सकूँ), तो बैंक से पाँच करोड़, दो-पाँच करोड़ रुपए उधार लेकर मैं चला जाऊँ। बाकी, लड़के चुका देंगे, मुझे कहाँ चुकाना पड़ेगा? मैं ड्राफ्ट लेकर (चला जाऊँगा)। मगर ड्राफ्ट की सुविधा नहीं है, वो (बस) मुश्किल (परेशानी) है। इतनी लोभ कषाय मेरे को है। पाटनी जी साहब! उसने बोला, मैंने नहीं बोला। सेठी जी! पी सी सेठी! उसने बोला कि इतना लोभ है कि सारी बैंक की उधारी, दो टका, तीन टका कोई भी ब्याज हो, समझे? मैं रुपया लेकर ड्राफ्ट निकाल लूँ, परभव का। मगर ड्राफ्ट निकलता नहीं है, वो तकलीफ है। क्योंकि पैसा तो चुकाने की मेरी जवाबदारी नहीं है। मैं तो छोड़ के चला जाऊँ, तो बाकी (पैसे) लड़के चुकायेंगे। इतनी मेरे को लोभ कषाय है।

श्रीमद् जी ने तो यहाँ तक कहा है कि जो आजीविका का साधन तेरे पास बन गया है, गृहस्थ हो, (तो) उतना ही लंबा हाथ करना ठीक नहीं, इसलिए इतना (पाप तो) क्षम्य है। समझे? लुहाड़िया जी! कि आजीविका का साधन जो मिल गया हो, तो बस कर ले अभी। आहाहा! आत्महित कर ले। लग जा इसमें। आहाहा! वो ज्ञान-लक्ष्मी साथ में आएगी, आत्मज्ञान। शास्त्र-ज्ञान साथ में नहीं आएगा, क्योंकि वो जड़ ही है, इंद्रियज्ञान। जड़ साथ में नहीं आता है। चेतन के साथ जड़ नहीं (आता)। जड़ इधर रहता है। देह इधर रह जाती है, कर्म इधर रह जाता है, राग इधर रह जाता है और शास्त्र-ज्ञान भी इधर रह जाता है, आत्मा चले जाता है अपना उपयोग लेकर। उपयोग लक्षण है ना? आहाहा!

आहाहा! **छह द्रव्य को** ऐसा बनाव बन गया। नाम भी है मेरे पास, लेकिन नाम कहना नहीं (है)। आहाहा! नाम भी अपना कहा कि, हे लालू भाई! मुझे तो इतना लोभ कषाय है कि पैसे सबके ले लूँ और ड्राफ्ट बनाकर भाग जाऊँ। पैसे लड़के चुका देंगे। मेरे को कहाँ चुकाना है? चुकाने के लिए मेरे पास तो कोई आएगा नहीं। मेरी तो मृत्यु हो जाएगी। कि तेरे बाप ने रुपया ले लिया, तो (लड़के उसको कहेंगे कि) बाप के पास जा। लड़के भी आजकल के ऐसे करेंगे। आजकल के लड़के, पहले के लड़के तो पिता का कर्ज़ चुकवाते थे। चुका देते हैं। हिन्दी में क्या? चुकाते हैं। पहले के काल में नीति बहुत थी, अब तो बहुत गड़बड़ है सब। जाने दो!

आहाहा! **छह द्रव्य को जाननेवाली ज्ञान की पर्याय अपनी है, उसे छह द्रव्य का ज्ञान कहना, वह व्यवहार है; ज्ञेय-ज्ञान, ज्ञेय का नहीं है, परंतु ज्ञान का ज्ञान है।** ज्ञेय का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान नहीं होता है। आत्मा का ज्ञान होता है। ज्ञान का ज्ञान होता है। आहाहा! **जाननक्रियारूप भाव ज्ञानस्वरूप है।**

पंडित जयचंदजी यही स्पष्ट करते हैं। पंडित जयचंदजी भावार्थ में स्पष्ट करते हैं।

और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। पहले ज्ञान की सिद्धि की, अब ज्ञेय की सिद्धि होती है, बाद में ज्ञाता की सिद्धि। तीन भाव हैं ना? ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता। ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता। तो ज्ञान कहाँ रहता है? ज्ञेय कहाँ रहता है? ज्ञाता कहाँ रहता है? इधर ही रहता है। तीनों इधर ही अंदर में हैं। शरीर ज्ञेय नहीं है। राग ज्ञान का ज्ञेय नहीं है। कर्ता का कर्म तो नहीं है, उसको तो दिल्ली बहुत दूर है। कर्ता मानता है, कषाय की मंदता, वो तो आया ना? व्रतादि का अभ्यास करता है, (वह) मिथ्यात्व का अभ्यास करता है। कषाय की मंदता कहो कि व्रतादि, आहाहा! तो स्वच्छंदी हो जाएगा? नहीं भेदज्ञान से सम्यग्दर्शन हो जाएगा। स्वच्छंद की बात इधर है नहीं। आगे-आगे बढ़ने की बात है, नीचे उतरने की बात नहीं है।

और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। बाह्य ज्ञेय, ज्ञान से भिन्न हैं। बाह्य छह पदार्थ है, देव-गुरु-शास्त्र सब, ये मोटर, बँगला आदि सब भिन्न हैं। **वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते**; ज्ञान में आ नहीं जाते। **ज्ञेयों के आकार की, आकार की, ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर**, झलक समझे ना? प्रतिभास। आहाहा! **पड़ने पर, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है।** ज्ञान, उस अपेक्षा से देखो तो, ज्ञेयाकाररूप है, ऐसा दिखाई देता है। **परंतु वह ज्ञान की ही कल्लोलें तरंगें हैं। वे ज्ञान कल्लोलों ही, ज्ञान तरंगें ही**, कल्लोलों का अर्थ तरंग, उत्पाद, पर्याय। **ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं।** ज्ञेय ज्ञात नहीं होता है, ज्ञान ज्ञात (होने) में आता है। आहाहा!

आहाहा! देखो! बाह्य ज्ञेयो रागादिक से लेकर, राग से लेकर, छहो द्रव्य अपने आत्मा से, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से, पर्याय ले लिया। ज्ञान की पर्याय आत्मा की है। राग की पर्याय आत्मा की नहीं है। आहाहा! राग की पर्याय का कर्ता पुद्गल है। कर्मकृत राग है, वो नहीं बैठता है किसी को। कोई-कोई को नहीं बैठता है। समझे? कि कर्म कर्ता नहीं है, पुद्गल से राग नहीं होता है। ठीक है, नहीं बैठे तो नहीं बैठो। मगर पर्यायकृत राग है इतना भी बैठता नहीं है। वो भी बैठता नहीं है कि जीवकृत राग है। राग को जीवकृत मानने की मान्यता अनादिकाल से है। एक पर्यायकृत अथवा तो पुद्गलकृत है। दो में से जो ठीक पड़े वह ले ले, मगर जीवकृत तो नहीं है। ऐसा ले ले! आहाहा! पुद्गल के साथ राग का व्याप्य-व्यापक संबंध है।

एक भाई देवलाली आया था। उसको बताया। नहीं बैठा। आहाहा! विवाद हुआ। भाई! शास्त्र में लिखा है, निमित्त सापेक्ष से देखो तो पुद्गल कर्ता है। और उपादान की अपेक्षा से देखो तो, पर्याय का कर्ता पर्याय है। मगर त्रिकाली शुद्धात्मा अशुद्ध पर्याय का कर्ता तीन काल में होता नहीं। तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई (है)। जा! अज्ञानी बन गया तू। तीन काल में भगवान निष्क्रिय आत्मा कभी राग का कर्ता हुआ ही नहीं, होगा (ही) नहीं। आहाहा! मानता है तो उसको अज्ञान हो गया। बुद्धि, जीवतत्व संबंधी विपरीत मान्यता में आ गयी। कठिन काम तो है, मगर, जिसको आत्मा चाहिए उसको सब सहज में प्राप्त हो जाता है।

और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। बाह्य ज्ञेय, ज्ञान से भिन्न है, वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है, परन्तु वह ज्ञान की ही कल्लोले - तरंगें हैं। वे ज्ञान कल्लोले ही, ज्ञान तरंगें ही, **ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं।** ज्ञेय ज्ञात नहीं होते, ज्ञान ज्ञात होता है। ज्ञान से ज्ञान जानने में आता है, ज्ञान से ज्ञेय जानने में आता नहीं

है।

ज्ञेय को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान है। आत्मा को जाननेवाला स्व-संवेदनज्ञान है। कश्मीरीलाल जी! दो भागला पाड़ दिया। आहाहा! दो भागला पाड़ दिया! अभी पढ़ा ना? अमितगति आचार्य का बताया ना इसमें। आहाहा! राग कहो कि देह कहो, एक ही बात है। राग और देह जुदा नहीं है, एक ही बात है। भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म एक ही जाति का भाव है। इधर ज्ञान जाति आत्मा की है और जड़ जाति राग की है। आहाहा! जड़ आश्रित होने से वो जड़ ही है। कर्म आश्रित होने से वो कर्मकृत ही है, आत्मकृत नहीं है।

वो कठिन पड़े तो पर्यायकृत है, ऐसा ले ले, पर जीवकृत तो नहीं है। कठिन पड़े, कोई बाधा नहीं। भेदज्ञान कर ले कि पर्याय का कर्ता पर्याय है, कर्म नहीं है। नहीं बैठे तो कोई बात नहीं, पर जीवकृत तो नहीं है। अरे! आत्मज्ञान का कर्ता आत्मा कहना, वो उपचार है। आहाहा! ऐसी अंदर की बात है भैया! आहाहा! **वे ज्ञान कल्लोले ही**, ज्ञान तरंगें ही **ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। आहाहा! देखो, देखो, बाह्य ज्ञेय-रागादि से लेकर छहों द्रव्य अपने आत्मा से (अपने द्रव्य-गुण,-पर्याय तीनों से)** उपयोग में राग नहीं है। उपयोग में उपयोग है। उपयोग में क्रोधादि नहीं है। आहाहा! कभी? तीनोंकाल। कभी? तीनोंकाल। अज्ञानी के लिए? अज्ञानी के लिए भी उस उपयोग में राग नहीं है। मानता है, तो अज्ञान बन जाता है। मान लेता है तो अज्ञानी बन जाता है। आहाहा!

ज्ञान में दुःख नहीं है इसलिए ज्ञान दुःख का वेदक नहीं है। और दुःख ज्ञान में नहीं है इसलिए ज्ञान में दुःख जानने में आता नहीं है। क्योंकि ज्ञान से दुःख भिन्न है इसलिये (दुःख) जानने में नहीं आता है। और ज्ञान से आत्मा अभिन्न है, इसलिए आत्मा जानने में आता है। दुःख के काल में भी आत्मा जानने में आता है। दुःख, दुःख में रह जाता है। आहाहा!

सविकल्पदशा में भी आत्मा जानने में आता है। निर्विकल्पध्यान में तो आत्मा जानने में आता ही है। ज्ञेयाकार अवस्था में भी जाननेवाला ज्ञायक जानने में आता है। जो जाननेवाला जानने में नहीं आवे तो ज्ञेयकृत अशुद्धता लागू हो जाती है। आहाहा! बहुत माल समयसार में भरा है।

छहद्रव्य अपने आत्मा से भिन्न है। **यदि वे भिन्न न हों**, पर ज्ञेय से आत्मा से भिन्न न हो **तो एक हों जाय**, तो ज्ञेय और ज्ञान एक हो जाए। ज्ञेय और आत्मा एक हो जाए। आहाहा! ऐसा तो होता नहीं। **परंतु ऐसा कभी बनता ही नहीं! (नहीं होता)** राग और आत्मा एक हो जाए, ऐसा कभी बननेवाला है नहीं। दुःख और आत्मा, ज्ञानमय आत्मा और आकुलतामय आश्रव, आत्मा और आश्रव एक हो जाए, ऐसा कभी बननेवाला है नहीं। एक बने तो नवतत्व का आठ हो जाए। आठ तो होता नहीं है।

परंतु ऐसा कभी बनता नहीं है। राग लिया ना? राग है इसमें। आहाहा! हाँ! लिखा है पहले राग। राग को इधर स्थापता है और शरीर को बाहर स्थापित (करता) है। आहाहा! कठिन पड़ता है। राग तो इधर होता है। इधर राग होता है कि बाह्य में राग होता है? अंदर में आत्मा का ज्ञान होता है। उस ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। सविकल्पदशा में राग जानने में आता है। बस! जानने में आता है ले ले, सविकल्पदशा में। आहाहा! सचमुच तो उस समय में ज्ञान जानने में आता है। क्या करें? आहाहा!

ऐसा कभी नहीं होता, है नहीं। आगे **राग का ज्ञान हो, उसमें कहीं राग, ज्ञान की पर्याय में**

आता नहीं। आया देखो! क्या कहा? राग है। सविकल्पदशा में साधक को पाँच महाव्रत का राग होता है, देशव्रत का भाव भी पंचम गुणस्थान में आता है, अविरत सम्यग्दृष्टि को भी देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का, वंदन का, यात्रा का विकल्प शुभ राग आता है। नहीं आता है, ऐसा है नहीं। क्योंकि परिपूर्ण वीतरागदशा प्रगट नहीं हुई, इसलिए साधक को साथ में बाधक-तत्व उत्पन्न होता है।

राग का ज्ञान हो, तोभी राग, कभी ज्ञान की पर्याय में आता नहीं है। आहाहा! राग दूर रहता है। और राग, राग, राग के लक्ष्य बिना जानने में आ जाता है। राग के लक्ष्य से राग जानने में आता नहीं है। लक्ष्य तो आत्मा पर है। राग पर लक्ष्य जाता ही नहीं है और (राग) जनित जाता है। आहाहा!

अद्भुत बात है! अद्भुत से अद्भुत बात, चमत्कारिक बात है। आहाहा!

थोड़ा बड़ी उम्र के आदमी को तो रिटायर होना चाहिए और छोटी उम्र के आदमी में भी पैसा हो जावे, तो रिटायर होना चाहिए। जयंतीभाई! यह काम करने जैसा है। लाभ ही लाभ है, उसमें कोई नुकसान नहीं है। तेरी लक्ष्मी चली नहीं जाएगी। घबराना नहीं। आहाहा! घबराना नहीं। लक्ष्मी, लक्ष्मी में ही रहेगी।

राग का ज्ञान हो तो भी राग कहीं ज्ञान की पर्याय में आता नहीं। दुःख ज्ञान की पर्याय में आता नहीं। राग के बदले दुःख ले लेना। समझे? सब ले लेना। **केवली को लोकालोक का ज्ञान हुआ तो लोकालोक कहीं ज्ञान में घुस गया नहीं है।**

प्रश्न आया था ना? प्रश्न कल आया था। कि अंदर किलित हो जाते है, डूब जाते हैं। ज्ञेयो ज्ञान में डूब जाते हैं। ज्ञेयो ज्ञान किलित हो जाते है, यह प्रश्न आया था। अरे भैया! व्यवहार के कथन कई प्रकार के होते हैं, उसको निश्चय मान ले। आहाहा! व्यवहार को निश्चय मानना, वही मिथ्यात्व है। भाई साहब ने कहा, युगल जी साहब ने। आहाहा! व्यवहार को निश्चय मानना, व्यवहार का पक्ष करना (मिथ्यात्व है)। आहाहा! व्यवहार तो होता है, ज्ञानी को, लेकिन व्यवहार का पक्ष होता नहीं है। व्यवहार का पक्ष श्रद्धा का दोष है और व्यवहार चारित्र का दोष है। दोष ही है। आहाहा! भेद पड़ता है तो व्यवहार होता है। अभेद में व्यवहार होता नहीं है।

केवली को लोकालोक का ज्ञान हुआ तो लोकलोक कहीं ज्ञान में प्रवेश नहीं कर गया। घट का जाननेवाला घटरूप नहीं होता तथा घट का जाननेवाला वास्तव में घट को जानता है- ऐसा भी नहीं है। सामने घट हो तो कोई कहे साहब! ज्ञानी को पूछे कि साहब! ये घड़ा है, वो आपको जानने में आता है कि नहीं? नहीं, मेरे को तो (घड़ा) जानने में आता नहीं है। आहाहा! मेरे को तो मेरा ज्ञान जानने में आता है। वो समझे ही नहीं। तो घड़ा को जाननेवाला इंद्रियज्ञान है और आत्मा को जाननेवाला अतींद्रियज्ञान जुदा है। आहाहा! घड़े को प्रसिद्ध करनेवाला इंद्रियज्ञान है और आत्मा को प्रसिद्ध करनेवाला अतींद्रियज्ञान है। दो ज्ञान अलग हैं, दो पदार्थ अलग हैं। आ गया सब। आ गया कि नहीं? आहाहा!

मुमुक्षुः- सब न्याय से स्पष्ट होता है। सब न्याय से स्पष्ट होता है।

उत्तरः- न्याय से स्पष्ट होता है। बोलो! आहाहा! उसका अर्थ कि हमको बैठता है (सही लगता है)। हमको (बैठता है)। हकार आया ना इतना। आहाहा! अरे! हकार आए (हाँ करेगा) तो हालत हो (बदल) जायेगी, गुरुदेव फरमाते हैं। हकार आए तो हालत (बदल जाएगी)। ऐसा (न-न) नहीं करना और समझे बिना ऐसा (हाँ-हाँ) भी नहीं करना। ऐसा कुंदकुंद भगवान ने कहा है। मैं कहूँगा, मगर परीक्षा करके

अनुभव से प्रमाण करना। मगर ऐसा (न-न) तो मत करना, कुंदकुंद भगवान के सामने। ज्ञानी के सामने (न), ऐसा तो नहीं करना और समझे बिना ऐसा (हाँ-हाँ) भी नहीं करना। ऐसा रखना और समझने के बाद ऐसा (हाँ) कर देना। बस! इतनी देर है।

ये गुरुदेव की क्या बात करें? आहाहा! शब्दों में आती नहीं। इतना अपने लिए धर्म-पिता, आहाहा! छोड़ गए बात। ९००० कैसेट्स हैं। आहाहा! ९०००-८५०० कैसेट्स हैं। वो जीवंत रह गई। समझे? गड़बड़ बहुत हुई। मगर ये रह गयी। आहाहा! ऐसा है। आहाहा! भाग्य है ना जीव का।

सोगानी हो गए एकावतारी पुरुष। एक व्याख्यान सुना, ज्ञान भिन्न और राग भिन्न, अनुभव कर लिया। एकावतारी पुरुष! उसने कहा है कि ये गुरुदेव की वाणी पंचमकाल तक लायक जीवों को निमित्त होगी। सम्यग्दृष्टि हो जायेगा, ऐसा उनके ज्ञान में आया है। सही है वो बात। ऐसी स्पष्ट बात। आहाहा! सिंह-गर्जना कर दिया, उन्होंने। पर को जानता ही नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? कि जाननेवाले को जानता है। भले पर का प्रतिभास हो, स्व का प्रतिभास हो, स्वपरप्रकाशक है नहीं। स्वपरप्रकाशक भी स्वप्रकाशक ही है। ये ज्ञान की पर्याय जिसमें स्व-पर भासता है, ऐसी एक ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। स्व-पर दो जानने में आता है? कि नहीं। स्व-पर दो का प्रतिभास होता है, ऐसी द्विरूप ज्ञान की एक पर्याय जानने में आती है। आहाहा! बहुत खुलासा हो गया।

तथा घट का जाननेवाला वास्तव में घट को जानता है - ऐसा भी नहीं है। वास्तव में खरेखर! **स्व-पर को जानने के ज्ञानरूप स्वयं आत्मा ही होता है। स्व-पर को जानने के ज्ञानरूप स्वयं आत्मा ही होता है, घट को जानने के ज्ञानरूप तो आत्मा होता है; इसीलिए घट का ज्ञान नहीं। घट को जानने के ज्ञानरूप आत्मा होता है; इसलिए घट का ज्ञान नहीं, परंतु आत्मा का ही ज्ञान है।**

घट निमित्त है तो भी घट का ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान तो आत्मा का ही होता है, भले घट निमित्त हो। आहाहा! **अपने में तो अपने ही ज्ञान परिणाम का अस्तित्व है।** अपने में तो ज्ञान परिणाम का अस्तित्व है। घट का अस्तित्व, राग का अस्तित्व अपने में नहीं है। वह तो बाह्य है। राग बाह्य स्थित है। आहाहा! बहिर्तत्व है। ज्ञान अंतःतत्व है।

अस्तित्व है, ज्ञेय का नहीं। ज्ञान का अस्तित्व तो इधर है। ज्ञेय का अस्तित्व इधर नहीं है। राग का अस्तित्व इधर (नहीं है)। आहाहा! राग जुदा और ज्ञान जुदा। कभी? राग के सद्भाव के समय में। देह जुदा और आत्मा जुदा कभी? कि देह का संयोग होने पर भी देह जुदा और आत्मा जुदा। ऐसे राग का संयोग होने पर भी... राग का संयोग है वो (तो) देह का जैसा संयोग, वैसा (ही) राग का संयोग होता है। मगर वो संयोग है, स्वभाव नहीं है। इसलिए स्वभाव से राग भिन्न रहता है। आहाहा! एकत्व नहीं होता है। एकत्व माने तो भी एकत्व होता नहीं है। एकत्व मानता है तो ज्ञान का अज्ञान बनता है और भिन्न को माने तो ज्ञान का ज्ञानत्व बन जाता है, ऐसी बात है।

ज्ञेय का नहीं। आत्मा का 'ज्ञ' स्वभाव है और 'ज्ञ' स्वभावी आत्मा में जाननक्रिया होती है, आत्मा में राग की क्रिया नहीं होती है। आत्मा में राग की क्रिया होती है (ऐसा जिसने माना), तो उसने ज्ञान की क्रिया का नाश कर दिया। आहाहा! ज्ञान को छोड़ दिया। ज्ञाता-दृष्टा का भाव को त्याग करता है। विभाव भाव को ग्रहण करता है।

और 'ज्ञ' स्वभावी आत्मा में जाननक्रिया होती है, अनादि-अनंत जाननक्रिया होती है। एक समय (की) राग की क्रिया आत्मा में होती नहीं। हाय! हाय! तो अज्ञान सिद्ध नहीं होगा। चारगति सिद्ध नहीं होती। चारगति में रखड़ना है तेरे को कि सिद्ध होना है? आहाहा!

राग का आत्मा कर्ता नहीं कहो, तो चारगति सिद्ध नहीं होगी। तो पंचमगति तो सिद्ध होगी कि नहीं? राग का कर्ता आत्मा नहीं है, तो पंचमगति (ही) सिद्ध होगी। तो उसमें तेरे को क्या नुकसान? लाभ ही लाभ है। बसंतभाई! समझ में आया कुछ?

दलील होता है, ऐसी हमारे सामने तो बहुत दलील हुआ। आत्मा राग का कर्ता नहीं है, लालूभाई दांडी पीटकर। कि हाँ! कहता हूँ। फरियाद करनी हो तो जाओ कुंदकुंद भगवान के पास। हमें कुंदकुंद भगवान और गुरुदेव ने कहा है। राग का कर्ता नहीं मानो तो चारगति सिद्ध नहीं होगी। मैं कहता हूँ राग का कर्ता नहीं माने तो पंचमगति प्राप्त होगी, होगी और होगी। राग की कर्ताबुद्धि में जीव अनादिकाल से भटक रहा है। राग का कर्ता आत्मा नहीं। ज्ञान का कर्ता, आत्मज्ञान का कर्ता भी कथंचित् है, वह भी सर्वथा नहीं है। आहाहा!

स्वभाव है और 'ज्ञ' स्वभावी आत्मा में जाननक्रिया होती है, वह स्वयं से होती होने से स्वयं की क्रिया है, उसमें परज्ञेय का कुछ है ही नहीं। कुछ है ही नहीं, है ही नहीं। आहाहा! उस सारा ज्ञेय का ज्ञान होता, ऐसा नहीं है। **इस प्रकार ज्ञेयसंबंधी अपने ज्ञान का जो परिणमन हुआ, वह ज्ञेय स्वयं, ज्ञान स्वयं ही और स्वयं ही ज्ञाता है। वह ज्ञेय स्वयं, ज्ञान स्वयं ही और स्वयं ही ज्ञाता है। समझ में आया कुछ?**

गुरुदेव बताते हैं समझ में कुछ आया? कि मैं ज्ञान, वो मेरा ज्ञेय, ऐसा नहीं है। तू ही ज्ञान और तू ही ज्ञेय। समझ में कुछ आया? आहाहा! मैं कर्ता और राग मेरा कर्म, ऐसा तो है ही नहीं, वो तो दिल्ली बहुत दूर है। मगर मैं ज्ञाता और राग मेरा ज्ञेय, ऐसा भी नहीं है। और मैं ज्ञाता और मैं ज्ञेय, ऐसा भेद भी इसमें नहीं है। वो तो अभेद हो जाता है। भेद से समझाया जाता है, बाकी तो अभेद आत्मा है। ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय एकरूप है। स्वज्ञेय है। आहाहा! निर्मल पर्याय से परिणमित हुआ आत्मा स्वज्ञेय है। टाइम हो गया।